सम्पादकीय / Editorial

विज्ञान प्रकाश का एक नया अंक आप सभी सुधी पाठकों की सेवा में उपस्थित है. इस बार भी इस अंक में विभिन्न क्षेत्रों से चयनित रचनाएं संकलित हैं जो पाठक के समक्ष विज्ञान तथा तकनीकी के सामयिक परिदृश्य की एक झलक दे रही हैं.

भारतीय भाषाओं के संवैधानिक प्रावधानों ने इन भाषाओँ को न सिर्फ मान्यता दी है, इनके प्रचार प्रसार के लिए तकनीक विकसित करने के लिए भी आयाम खोले हैं. अधिकतर भारतीय भाषाएँ वाक्य विन्यास की दृष्टि से मिलती जुलती हैं, परन्तु कतिपय चुनौतियों के संग. साथ ही भाषाओं में संज्ञा विशेष के लिंग भेद, स्थानिक पुट तथा उच्चारण विशिष्टताएं उन्हें जीवन्तता प्रदान करती हैं. अक्सर अनुवाद के दौरान यह जीवन्तता विलोपित हो जाती है. आरंभिक मशीनी अनुवाद में इस विषय में कई चुनौतियां थीं, लेकिन, समय के संग अनुवाद बेहतर तथा प्राणवान दिखने लगे हैं. लेकिन, फिर भी मूल रचना और अनुवाद के मध्य सम्प्रेषण–शक्ति में अंतर आज भी दिखता है. और यह अंतर चाहे सूक्ष्मतर होता जाए, बना ही रहेगा. इसलिए, जहां तक संभव हो भारतीय भाषाओं में मौलिक सृजन को प्रोत्साहन तथा प्राथमिकता मिलनी चाहिए.

मौलिक सृजन उपलब्ध न होने से पाठक के मन में भी निज भाषा को लेकर एक मनोग्रंथि बनी रहती है. परिणाम यह कि अनुवाद को ठीक से अपनाया नहीं जाता. विडंबना यह है कि कई परिपत्रों में अंग्रेजी तथा उनके अनुवाद के संग एक पंक्ति लिखी जाती है, "विवाद की स्थिति में मूल अंग्रेजी पाठ ही मान्य होगा" या इसी अर्थ में कोई और पंक्ति. यह भी अंग्रेजी के भारतीय भाषाओं पर हावी होने का एक प्रत्यक्ष विधायी साक्ष्य है.

इस विमर्श में एक विशेष बिंदु उभर कर आता है कि तमाम शासकीय, समर्पित व्यक्तिगत तथा निस्वार्थ संस्थागत प्रयासों से भी अधिक बाजार की आवश्यकता के कारण हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को स्थान मिलने लगा है. विज्ञापन, उत्पाद, कंप्यूटर–इन्टरनेट तथा टेलीविजन प्रसारणों में भारतीय भाषाओं का अधिकाधिक उपयोग दृष्टिगोचर हो रहा है. यह भाषाओं की अपनी शक्ति तथा उनके उपासकों का संख्याबल है कि व्यापार को भारतीय भाषाओं का सहारा लेना पड़ा है. आज खेलों के आँखों देखे हाल से लेकर उत्पादों के संग मिलने वाले उपयोग–निर्देश तक विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध हैं. यह तकनीक तथा व्यापार के समन्वयन का एक उजला पक्ष है.

स्वतंत्रता के बाद भाषागत विवाद तथा निज भाषा मोह ने भी भारतीय भाषाओं के एकजुट होकर वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के प्रयासों में रुकावट डाली है. चाहे उत्तर दक्षिण का विवाद हो या दक्षिण में ही विभिन्न भाषाओं के आपसी संघर्ष हों, इसने भारतीय भाषाओं के समन्वित समूह के मध्य दरारों को ही रेखांकित किया है. समय के संग तथा परस्पर निर्भरता के कारण ये रेखाएं धुंधलाने लगी हैं. लेकिन, इन रेखाओं को मिटाने के लिए हर भाषा के उत्थान के लिए कार्य करना आवश्यक है. आवश्यक है कि हर भाषा में मौलिक लेखन को प्रश्रय मिले, अनुवाद की सुगमता हो तथा इस हेतु आवश्यक तकनीकी सहायता उपलब्ध हो.

प्रथम कार्य उस भाषा के लेखकों, सर्जकों तथा उपयोग कर्ताओं को करना होगा, शेष कार्य उनके सहयोग से तकनीक तथा व्यापार का रुझान स्वतः कर देगा.

– रंजन माहेश्वरी